# शिक्षा के देशज स्वरुप और धर्म निरपेक्ष चरित्र का प्रश्न

**कृष्ण कुमार के साथ राजाराम भादू की बातचीत**

❑ जिस प्रकार भारतीय चिन्तन है, भारतीय दर्शन है, भारतीय संस्कृति है; ऐसे क्या 'भारतीय शिक्षा' जैसी किसी अवधारणा का अस्तित्व रहा है ?

*कृष्ण कुमार : मैं अपने शिक्षा संबंधी शोध में, लेखन में, शुरु से यह मानता रहा हूँ कि जो भी, जिस भी अवधारणा पर हम चर्चा कर रहे हैं, वो अवधारणा हमें एकदम अपने आसपास के, अपने समय के संदर्भों से विकसित करनी चाहिए। और इसी तरह मैं भारतीय शिक्षा का जो आपने सवाल उठाया है, इसको भी लूंगा ।*

भारतीय शिक्षा सहज अर्थ में मेरे लिए वो है जो आज भारत में दी जा रही है, जो भी उसकी दशा है । उसको प्रसंगवश आप अन्य विशेषणों में भी रख सकते हैं लेकिन वो भारत की शिक्षा है इसलिए भारतीय शिक्षा है । भारतीय शिक्षा को लेकर कोई एक ऐसी अमूर्त अवधारणा बनाना या कोई ऐतिहासिक अवधारणा बनाना मुझे बहुत कठिन लगता है और व्यर्थ भी लगता है, जिसका संबंध आज की भारत में दी जा रही शिक्षा से न हो। वैसे भी यह कहना बहुत मुश्किल है कि भारत में शिक्षा की कोई अविच्छिन्न परंपरा रही है । इतिहास के विभिन्न दौरों में समाज और उसकी राज्य-व्यवस्था, उसकी संस्कृति और उस पर पड़ रहे दबावों इत्यादि के आधार पर शिक्षा लगातार हर अन्य समाज की तरह हमारे यहां भी अलग अलग रूप लेती रही है । इसलिए उसकी कोई अविच्छिन्न परंपरा नहीं देखी जा सकती ।

ये जो दौर आप देखते हैं, अमूमन 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में, औपनिवेशिक शक्तियों के जमने की प्रक्रिया में शिक्षा का जो रूप उभरा, उसी की लय आप आज तक देखते हैं । जब आप इसको ''औपनिशवेशिक शिक्षा'' के विशेषण के अन्तर्गत रखते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि इससे अलग कोई ऐसी अनोखी, निराली भारतीय शिक्षा की अवधारणा है जिस को आप इसके बरक्स रख सकते हैं । बहुत से लोग ऐसा करते हैं, वे सोचते हैं कि भारतीय शिक्षा तो वो है जो कि प्राचीन काल में दी जा रही थी । और इस बात को कहते हुए वे तुरंत एक विचारधारा, एक राजनीतिक विचारधारा के अन्तर्गत अपनी बात रखने लगते हैं । ऐसी विचारधारा जो यह मानती है कि भारत का जो एक शुद्ध रूप था वो केवल प्राचीन काल में था । ऐसा प्राचीन काल जिसको उन्होंने मिथकों और कल्पनाओं की मदद से बनाया है । जो दरअसल एक ऐतिहासिक प्राचीनकाल नहीं है ।

मुझे नहीं लगता कि आज की शिक्षा के बरक्स उस शिक्षा को, अगर उस शिक्षा के बारे में हमें कुछ पता भी लग जाये, जो बहुत कम हमारी जानकारी है - मान लीजिए बढ़ भी जाये, तो भी आज की शिक्षा के बरक्स उस शिक्षा को रखना एकदम व्यर्थ है । इसलिए व्यर्थ है क्योंकि किसी भी युग में शिक्षा उस समय के समाज के अनुभव से ढलती है । बहुत बड़ा फर्क देखें, चाहे आप प्राचीनकाल में देखें, चाहे मध्यकाल में देखें या किसी भी और वक्त में देखें, आधुनिक काल से पहले शिक्षा कभी सार्वभौमिक अर्थ में नहीं ली गयी । हर बच्चे को शिक्षा दी जाये, कुछ निश्चित वर्षों में दी जाये - ये अवधारणा है और इस अवधारणा के चलते वे शिक्षा व्यवस्थाएं जो थोड़े से लोगों के लिए संस्थायी शिक्षा का प्रबंध करती हैं, हमारे लिए एक प्रकार से अप्रासांगिक कही जाती है । उनमें निहित कुछ शैक्षणिक परंपराएं यानी पढ़ाने के तरीकों की परंपराएं हमारे लिए प्रासंगिक हो सकती हैं और उन पर हमें विचार करना चाहिए कि प्राचीन काल से हमारे यहां शिक्षण की कौन सी विधियां इस्तेमाल की जाती रहीं, विभिन्न विषयों के लिए । वो एक अलग प्रसंग है लेकिन शिक्षा की अवधारणा हम किसी और समय से नहीं ले सकते ।

हम तो, आज की शिक्षा का जो चरित्र है, उस चरित्र में एक तरफ औपनिवेशिक चरित्र भी है, दूसरी तरफ उसमें एक तरह का बहुत सा पुरातनपंथी, पोंगा पंथी चरित्र भी है जो उसके भीतर निहित है और उसी के ऊपर औपनिवेशिक चरित्र की एक परत चढ़ गई है । इस शिक्षा व्यवस्था को समझकर और इसकी जड़ता से संघर्ष करके ही एक नयी शिक्षा व्यवस्था को जन्म दे सकते हैं । किसी प्राचीन आदर्श को फिर से लागू करने का जो

एक सपना या एक राजनीतिक इरादा है उससे कुछ हासिल नहीं होने वाला है - ऐसा मैं सोचता हूँ ।

❑ मूल्य-संरचना के लिहाज से जैसे बात की जाती है - कि जितने भी पुराने भारतीय प्रसंग रहे हैं, हालांकि एक बहुत सीमित, एक वर्चस्वशाली तबके तक ही उसका प्रसार है और ब्राह्मणवादी वर्चस्व है, लेकिन जनसाधारण में हम आज भी देखते हैं कि वो ज्ञान, शिक्षा या विद्या इन शब्दों से जो अर्थ लेता है उसमें कई बार सत्य भी समाहित होता है मूल्य के स्तर पर, कई बार उसमें 'न्याय' जो है वो समाहित है और सौंदर्य का बोध भी। इन सबसे निरक्षर लोगों की आकांक्षाएं देखें तो एक मूल्य संरचना दिखती है । फिर जो शिक्षा का औपनिवेशिक रूप आया, उसने इस व्यापक अर्थ को बहुत सीमित किया, संकुचित किया तो शिक्षा के देशज स्वरूप के मामले में इसे हम देख सकते हैं क्या ?

*कृष्ण कुमार : देखिए, देशज अपेक्षाएं अंतत: बदलते हुए परिवेश के प्रति सामान्य जन की प्रतिक्रियास्वरूप ही जन्म लेती हैं। जैसे आपने सत्य की बात की । अब 'सत्य' क्या है, शिक्षा के संदर्भ में 'सत्य' क्या है ? आप समझ सकते हैं कि एक तरफ वो सत्य है जो समकालीन,आधुनिक विज्ञान के आधार पर तय हुआ । जैसे कि यह सत्य है कि हम इसको सत्य मानते हैं कि सूर्य पृथ्वी के चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है । जब पहली बार औपनिवेशिक काल में ये बात पढ़ाई गई होगी तो एक संघर्ष उत्पन्न हुआ होगा जन मानस में कि यह तो हमारे स्वीकृत सत्यों से अलग सत्य पढ़ाया जा रहा है । और उस संघर्ष के परिणाम स्वरुप हमें मालूम है कि औपनिवेशिक शिक्षा को एक विदेशी या एक बेगानी शिक्षा के रूप में देखने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया । ऐसे ही आप हर मूल्य की बात कर सकते हैं कि मूल्य भी समकालीन टकराहटों से, समकालीन संघर्षों से जो कि मनुष्य के मन में और उसके परिवेश के बीच की अन्तर्क्रिया से जन्म लेते हैं, हर युग में एक नया रूप धारण करते हैं ।*

***हम तो, आज की शिक्षा का जो चरित्र है, उस चरित्र में एक तरफ औपनिवेशिक चरित्र भी है, दूसरी तरफ उसमें एक तरह का बहुत सा पुरातनपंथी, पोंगा पंथी चरित्र भी है जो उसके भीतर निहित है और उसी के ऊपर औपनिवेशिक चरित्र की एक परत चढ़ गई है । इस शिक्षा व्यवस्था को समझकर और इसकी जड़ता से संघर्ष करके ही एक नयी शिक्षा व्यवस्था को जन्म दे सकते हैं ।***

औपनिवेशिक युग में, उसके बाद स्वतंत्रता के समय में 'न्याय' किस तरह से परिभाषित हुआ, यदि आप इसको लें तो आप पायेंगे कि जब एक सामान्यजन 'न्याय' की बात करता है तो उसके मन में भी एक मिली जुली सी, अस्पष्ट-सी छवि होती है कि न्याय क्या है ? वो प्राचीन युग का या अन्य किसी युग का न्याय नहीं है । यद्यपि उसके लिए शब्द वही इस्तेमाल हो रहा है लेकिन हम आज की व्यवस्था में आज के हिसाब से न्याय की आशा करते हैं तो वो 'न्याय' क्या है, उस न्याय को ढूंढ़ने के लिए आप प्राचीन पुस्तक का सहारा नहीं ले सकते । जैसे कि एक प्राथमिक शिक्षा की एक कक्षा में 'न्याय' क्या है ?' न्याय यही है कि शिक्षक हर बच्चे के साथ बराबरी का व्यवहार करें, यही न्याय है । ये 'न्याय' कतई आपको प्राचीन शिक्षा में नहीं मिलेगा, बल्कि एकलव्य का जो मिथक है वह तो इस न्याय का सीधे-सीधे निषेध है । हर बच्चे के साथ समान व्यवहार नहीं होना चाहिए, यह चीज वो मिथक, वो कथा हमें बताती है । अगर उसके हिसाब से चलें तो मैं समझता हूँ कि आज का जो माता पिता है, वह जिस न्याय की अपेक्षा कर रहा है, वह तो हम कतई प्राप्त नहीं कर सकते । इसलिए देशज परंपराओं को भी, देशज सोच के तरीकों को किसी ऐसे क्रम में ढालना कि वो कोई बहुत पुराने वक्त से संबंध रखते हैं, सही नहीं है । ये बात अलग है कि देशज समझ जिस तरह से अभिव्यक्त होती है, वो अभिव्यक्ति बहुत साफ-सुथरी नहीं होती, वो मिली-जुली अभिव्यक्ति होती है। वो एक प्रकार का असंतोष, एक प्रकार की चिंता, अपने परिवेश को लेकर एक तरह की अनिश्चितता दर्शाती है ।

जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो देशज सोच से हम बहुत ज्यादा मार्ग दर्शन नहीं पा सकते, हम केवल इतना कर सकते हैं कि इस देशज सोच में निहित जो अवधारणाएं हैं उन को थोड़ा सा साफ करके पढ़ने की कोशिश करें । और समझने की कोशिश करें कि ये कहां से आयी हैं । और जिस हद तक हम इनका उत्तर शिक्षा की दैनिक क्रियाओं में ही दे सकें, उस हद तक हम देशज सोच की अवधारणाओं का आदर करेंगे ।

❑ भारतीय संदर्भों में प्राथमिक शिक्षा की क्या विशिष्टताएं आप देखते हैं, आज वैश्विक स्तर पर इसके प्रसार पर जोर दिया जा रहा है, एक अन्तर्राष्ट्रीय मुहिम इसे लेकर सघन तरीके से शुरू हुई है तो भारतीय संदर्भ में हम इसे कैसे ग्रहण करेंगे - कौन सी विशिष्टता उसमें जोड़ना चाहेंगे और क्या घटाना चाहेंगे ?

*कृष्ण कुमार : देखिये, ये जो सवाल आपने उठाया, बहुत संक्षेप में इसका जबाव देना मुश्किल है फिर भी कुछ इशारों की मदद से इसका जबाव देने की कोशिश मैं करूंगा। ये जो विश्व स्तर की मुहिम है ... ये हमारे स्तर की भी मुहिम स्वतंत्रता के बाद बन चुकी थी । भले ही हम इसे पूरा नहीं कर सके, हमारा राज्य इस बात को पूरा नहीं कर सका कि हर बच्चे को प्राथमिक शिक्षा मिले। लेकिन इसके आशय क्या हैं और इसके तरीके क्या हो सकते हैं - ये एक प्रासंगिक सवाल मुझे लगता है।*

अगर एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जो थोड़े से लोगों के लिए थी उसको हर बच्चे के लिए ग्राह्य बनाना है तो हर बच्चे के लायक उसमें लोच और विविधता लाना जरुरी है । एक तो यह पहलू है और इस कारण से हमारे देश में शिक्षा के ढांचे की जो जड़ता है, उस जड़ता का टूटना बहुत जरूरी है । वो जड़ता यही है कि एक तरफ तो जो समाज में पहले से शिक्षित हैं उनके द्वारा शिक्षा पर काबिज रहने की प्रवृत्ति से पैदा हुई जड़ता है। दूसरी तरफ, नौकरशाही और शिक्षक के जो बहुत ही असमान रिश्ते हैं, उससे पैदा हुई जड़ता है । तीसरी तरफ शैक्षणिक विधियों में विकास न होने से पैदा हुई जड़ता है। पिटी पिटाई शैक्षणिक विधियां हमारे शिक्षक इस्तेमाल करते चले आ रहे हैं और शिक्षक का जो समाज में स्थान है, उसकी हैसियत है वो भी इस तीसरी वाली जड़ता में शामिल है । तो इन जड़ताओं से शिक्षा व्यवस्था को किसी हद तक मुक्त करके ही ये संभव हो पायेगा कि हम बच्चों की समूची जनसंख्या के लायक अपनी शिक्षा को बना सकें । क्योंकि आज की शिक्षा व्यवस्था तो इस तरह बनी है कि ज्यादातर बच्चे उससे हतोत्साह हो जायें और निकल जायें क्योंकि आज शिक्षा का उद्देश्य है सामाजिक चयन करना । अधिक से अधिक बच्चों को हटाके कम से कम बच्चों को इस स्थिति तक पहुंचाना कि वे किसी नौकरी के या समाज में चल रही प्रतियोगिता के लायक रह जायें ।

अब इसके विपरीत यदि आप जाना चाहते हैं तो इसके बहुत से आर्थिक और समाज-व्यवस्था संबंधी राजनीतिक आयाम हैं। जिनके लिए हमें पूरे समाज को तैयार करना होगा कि अगर हर बच्चा आठवीं तक पढ़ जाये और उसके बाद की प्रतियोगिता में शामिल हो जाये तो आप समझ सकते हैं कि जो बहुत ही असमान वितरण है साधनों का, नौकरी का वो बनाये नहीं रखा जा सकता वर्ना समाज में एकदम भयंकर तनाव जैसी स्थिति हो जायेगी । एक तरफ तो वो तमाम राजनीतिक तैयारियां हमें करनी हैं जिनके लिए आज की स्थिति बहुत ही अपरिपक्व है । दूसरी तरफ शिक्षा में वो लोच लाने की बात है ।

जो अन्तर्राष्ट्रीय मुहिम है उसमें भी कई जगह दिखायी देता है कि वो इन चीजों को समझकर आगे बढ़ रही है और हमारे जैसे देश में जो बाहर से पैसा आ रहा है उसको लेकर ये लगता है कि पैसा देने वाले भी और लेने वाली जो संस्थायें हैं वो इस बात को लेकर के किसी हद तक तो संवेदनशील हैं कि शिक्षा में ये लोच आनी चाहिये, शिक्षा व्यवस्था में ये लचीलापन आना चाहिये । लेकिन यहीं वो दूसरी वाली बात शुरू होती है जिसका आप ने पहले जिक्र किया था कि शिक्षा को लेकर जो आम ग्रामीण लोगों की जो देशज समझ है, उस देशज समझ के प्रति हमारा आदर भाव या हमारी उत्सुकता कि हम इस देशज समझ से कुछ चीजें साफ करके निकाल सकें और उनकी मदद से और उनके प्रति एक प्रकार का, एक तरह का जुड़ाव महसूस कर सकें । यह एक ऐसा आयाम है जिसकी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का और उनसे धन लेने वाली हमारी संस्थाओं का ध्यान नहीं है । मैं विशेषकर केवल एक अवधारणा की बात करके इस प्रसंग को समाप्त करूंगा।

बहुत चर्चा है कि शिक्षा को बाल केन्द्रित कैसे बनाया जाए और उस सिलसिले में बच्चे की प्रकृति का एक

बहुत ही रूढ़ सा चित्र लेकर तथाकथित खेल विधियों का बड़े पैमाने पर आप प्रचार देखते हैं । कई जगह तो ऐसा लगता है कि शिक्षा की सारी की सारी जो प्रक्रिया है उसको आप गाने-बजाने में और खेलने में समेट सकते हैं । पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के साथ वर्षों से ऐसा ही हुआ है और जो प्राथमिक शिक्षा के वर्ष हैं उनमें भी हम देखते हैं कि ये ऐसी स्थिति चल रही है । वैसे भी बालकेन्द्रित शिक्षा कोई नयी अवधारणा नहीं है । जो हमारे शिक्षक पढ़ते रहे हैं, यही पढ़ते रहे हैं कि शिक्षा में बच्चे को केन्द्र में बनाकर उसकी मनोवैज्ञानिक छवि को लेकर आगे बढ़ना चाहिये। मुझे लगता है कि इस पूरी प्रक्रिया में हम दो बड़े महत्वपूर्ण ऐसे शैक्षणिक मूल्यों को भूले जा रहे हैं और आज से नहीं भूल रहे हैं, ये मैं समझता हूँ हम बहुत लम्बे समय से भूल रहे हैं जिनकी शिक्षा की देशज समझ में बड़ी गहरी जगह है । और हमने उस जगह को लगातार एक तरह से खारिज किया है या उसको हमने अनदेखा किया है जैसे कि वो है ही नहीं । मैं आपसे स्मृति की बात करता हूँ, याद करना - जो शिक्षा की स्थापित व्यवस्था है उसमें और शिक्षा की नयी समझ तथाकथित आ रही है उसमें - इन दोनों से स्मृति का आदर या स्मृति का कोई स्थान गायब है ।

हम मानते हैं कि स्मृति तो एक कोई आधुनिक चीज नहीं है और याद करना एक बहुत बुरी चीज है । ये एक अच्छी से अच्छी संस्था हमारी शिक्षकों को ये बातें बता रही हैं कि याद किया हुआ उत्तर ठीक नहीं है । याद नहीं करना चाहिये। अब आप देखें कि करीब सौ सवा सौ साल से ये प्रयास चल रहा है कि स्मृति को शिक्षा में एकदम खारिज कर दिया जाये। इस प्रयास के, इस नीतिगत प्रयास के बावजूद हमें पता है कि स्मृति जिसको 'बैकडोर' कहते हैं पीछे के दरवाजे से हमारी शिक्षा व्यवस्था में घुसी हुई है और हावी है । हमको पता है कि कक्षा एक से लेकर आई.ए.एस. तक की परीक्षा स्मृति के सहारे पास की जाती है । और जिस चीज का कोई स्थान नहीं है, किसी भी नीतिगत दस्तावेज में, चाहे आप कोठारी कमीशन देखें तो उसमें भी स्मृति को गालियां मिलेंगी, चाहें तो आप उसके बाद के दस्तावेज देखें । राह चलते हर नीतिकार स्मृति को दो चार लातें मारता चलता है । इसके बावजूद स्मृति हर परीक्षा पर हावी है और बच्चा बच्चा जानता है कि याद करके आप पास हो सकते हैं - यानी आशा ये है कि हमने जिस मूल्य को एक बहुत ही जानबूझकर खारिज करने की कोशिश की है वो अंततः हमारे ऊपर फिर से हावी है । दूसरी तरफ एक ग्रामीण आदमी की समझ है जिसमें शिक्षा स्मृति के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है । स्मृति की बहुत लंबी एक परंपरा है जिसको लकर आप इतिहास में कहीं कोई ऐसा अपवाद नहीं पायेंगे । आप देखते हैं कि स्मृति के सहारे मौखिक परंपराएं सारी दुनियां में चलती हैं , भारत में ही नहीं चलती रही हैं । एक ऐसा शैक्षणिक मूल्य जिसको एक आम ग्रामीण व्यक्ति समझता है । उसको शिक्षा में खारिज करके हमने क्या पाया ? हमने यही पाया कि शिक्षा व्यवस्था में उसका विश्वास खो दिया । अगर उसका पांचवी-आठवीं पास बच्चा भी कोई सुंदर रचना अच्छी तरह से नहीं सुना पाता या उसको चार बातें याद नहीं रह पातीं या वो किसी बतायी गयी बात को ध्यान से सुनकर थोड़ी देर बाद नहीं बता सकता कि उसमें क्या था तो उसको लग सकता है कि इस शिक्षा से क्या मिला ?

> ***स्मृति हमारे लिए अगर एक चुनौती का विषय बनती, हम उसको सहज रूप में ग्रहण करते कि ये हमारी विरासत है, ये हमारी मजबूती है और हम आज समकालीन नयी वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक खोजों की मदद से इसको और संवारेंगे, सुधारेंगे, विकसित करेंगे तो 'स्मृति' हमारी शिक्षा का एक बहुत ही मजबूत पहलू बन जाती । वो 'बैकडोर' से आयी हुई एक गलत किस्म की चीज न बनती । तो ये केवल दृष्टिकोण का फर्क है कि हमने एक देशज समझ को किस हद तक खारिज किया ।***

स्मृति हमारे लिए अगर एक चुनौती का विषय बनती, हम उसको सहज रूप में ग्रहण करते कि ये हमारी विरासत है, ये हमारी मजबूती है और हम आज समकालीन नयी वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक खोजों की मदद से इसको और संवारेंगे, सुधारेंगे, विकसित करेंगे तो 'स्मृति' हमारी शिक्षा का एक बहुत ही मजबूत पहलू बन जाती ।

वो बैकडोर से आयी हुई एक गलत किस्म की चीज न बनती । तो ये केवल दृष्टिकोण का फर्क है कि हमने एक देशज समझ को किस हद तक खारिज किया । इस तरह के और भी कई बिंदु हैं लेकिन समय इसमें बहुत निकल जायेगा इसलिए इसको यहीं ....।

❑ शिक्षा के स्वरूप को धर्मनिरपेक्ष बनाये रखने के लिए किये गये संवैधानिक प्रावधान कितने कारगर रहे हैं?

*कृष्ण कुमार : देखिए ये जो धर्म निरपेक्षता का मामला है, संविधान में शिक्षा के संदर्भ में ये बहुत स्पष्ट नही था और उसके बाद के वर्षों में जो नीतिगत दस्तावेज जिस भी तरह के आधे-अधूरे या जैसे भी बने, उनमें भी ये कभी बहुत स्पष्ट नहीं रहा कि एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने का, एक कक्षा के स्तर पर, स्कूल के स्तर पर क्या अर्थ है ? यह कभी स्पष्ट नहीं रहा। एक बड़ी मोटी सी समझ रही कि इसका अर्थ है कि हम धर्म संबंधी बातें स्कूल में नहीं पढ़ायेंगे । दूसरी तरफ ये एक समझ रही कि हम विज्ञान से जुड़ा हुआ, जिसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहा जाता है वो पढ़ायेंगे । हमारी शिक्षा व्यवस्था में इन दोनों चीजों की समझ बड़ी ही भोंथरी रही, मैं ये कहूंगा ।*

❑ भारतीय स्कूली शिक्षा की धर्मनिपेक्षता को क्या शिक्षकों का दृष्टिकोण और पाठ्यपुस्तकों की अन्तर्वस्तु लगातार प्रभावित नहीं करते रहे हैं ?

*कृष्ण कुमार : धर्म को आपने वैसे नहीं पढ़ाया लेकिन धर्म संबंधी अनेक अनुष्ठान स्कूल के जीवन पर हावी रहे हैं । इस हद तक हावी रहे हैं कि आप सोचिए एनसीईआरटी और नीपा का जो कैंपस है उसके भीतर एक मंदिर है, तो ... याकि हमारी पाठ्यपुस्तकों में अगर आप देखें ... विशेष रूप से एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों में आप देखें तो, जिनको पता नहीं किस किस तरह की वैज्ञानिक छलनी से छानकर बच्चे तक पहुंचने दिया जाता है, उनमें भी आपको ढेरों ऐसे प्रतीक और कथानक मिल जायेंगे जिनमें सीधे-सीधे धार्मिक परंपराएं, धार्मिक प्रतीक जो हैं, झांक रहे हैं । इसको लेकर एक बड़ा असंतोष पैदा होता है कि अगर आप एक धर्म से जुड़ी हुई बातें दे रहे हैं तो फिर हर धर्म से जुड़ी बातें क्यों नहीं दे रहे हैं । इसको लेकर एक अनुपात क्यों नहीं है । तो जो मैंने आपसे स्मृति वाली बात की कि जैसे आपने स्मृति को खारिज किया वैसे आपने धर्म को खारिज किया। खारिज तो किया लेकिन गाहे बगाहे वो लोगों के मानस पर हावी है और आपके सामने उपस्थित हो गया है। यहां तक कि आप कक्षा छह और सात में एनसीईआरटी की सहायक पुस्तिकाएं देखें तो वे रामायण और महाभारत पढ़ाती हैं ।*

ये एक बहस का विषय हो सकता है कि क्या रामायण और महाभारत धर्म से जुड़ी हुई चीजें हैं या ये साहित्य से जुड़ी हुई चीजें हैं ? ये बहस हो सकती है लेकिन मैं फिर भी समझता हूँ कि विभिन्न धर्मों के मतालम्बियों का ये आरोप एकदम सही है कि अगर आप एक धर्म परंपरा में महत्वपूर्ण माने जाने वाली कृतियों को अनिवार्य रूप से लागू करते हैं तो अन्य धर्म परंपराओं से जुडी हुई कृतियों को भी किसी न किसी रूप में पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए । तो धर्म को लेकर के ... जो हमारी धर्मनिरपेक्ष समझ रही है स्कूल को लेकर वो बहुत ही आधी अधूरी और बहुत सुधार के लायक रही है ।

❑ कृष्ण कुमार जी, इसमें शिक्षक का दृष्टिकोण भी तो बहुत मायने रखता है, यदि एक पाठ मान लीजिए पौरोणिक कथा के तौर पर दिया भी गया है तो वो इसे कैसे पढ़ाता है ?

*कृष्ण कुमार : वैसे भी हमारे स्कूल में मनाये जाने वाले त्यौहार ही देखेंगे तो आप पायेंगे कि उनमें सभी धर्मों का बराबर स्थान कतई नहीं है । अगर इसको भी धर्मनिरपेक्षता का एक प्रतीक बनाया जाये तो ऐसा किसी भी तरह नहीं है । अब आप दूसरी तरफ देखें कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण जिसको धर्मनिरपेक्षता का प्रसारक कहा जाता है, हमारे यहां कैसे फैलाया गया । उसको लेकर तो बड़ी स्पष्ट स्थिति है कि विज्ञान हमारे यहां ऐसे पढ़ाया जाता है जैसे भाषा या जैसे कोई और विषय पढ़ाया जाता है । पाठ्यपुस्तक विज्ञान की कहती हैं कि ऐसा ऐसा होता है, बच्चा उसको पढ़कर बताने लगता है कि हां ऐसा ऐसा होता है । लेकिन विज्ञान को एक जीवन शैली के रूप में, सोच के एक ढांचे के रूप में विकसित करने की नौबत हमारे स्कूलों में आ ही नहीं पाती । जैसे एक मामूली सा उदाहरण*

*लें कि मलेरिया कैसे फैलता है, अब कक्षा चार का बच्चा याद कर लेता है कि मच्छर से फैलता है । मच्छर क्यों जन्म लेता है ? इसलिए जन्म लेता है कि गड्ढ़ों में पानी इधर उधर खड़ा रह जाता है । अब ये जो तथ्य है, इस तथ्य को अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जोड़ना है तो ये बहुत जरूरी है कि ये केवल एक पाठ न बनें बल्कि ये वर्ष भर कम से कम अपने स्कूल के इर्द गिर्द पूरे गांव में न सही तो कम से कम अपने स्कूल के इर्द गिर्द कोई गडढा न बनने देने की एक निरंतर प्रक्रिया हो । इससे ये जुडा होगा । या ये मच्छर के जीवन चक्र को किसी गडढे में देखते रहने की प्रक्रिया से जुडा होगा । ये किसी भी प्रकार से एक पाठ नहीं हो सकता जो एक दिन आया, ब्लैकबोर्ड पर हमने उसकी मुख्य बातें लिख दीं , आप उन्हें याद करके आगे चले गये लेकिन हमारे स्कूलों में आपको पता है कि यही होता है । लाखों स्कूलों के इर्द गिर्द आपको पानी के गडढ़े मिल जायेंगे, जिनको भरने की कोई जरुरत शिक्षक को या बच्चों को या समाज में किसी को महसूस नहीं होती । क्योंकि वो पाठ कहीं भी हमारे व्यवहार से नहीं जुड़ता । अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ इतना ही है कि कल तक हम पोंगा पंथी की बात याद करते थे, आज विज्ञान की बातें याद कर लेते हैं तो जाहिर है कि ये तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी भी तरह पोंगापंथ से भिन्न नहीं है । हमारे स्कूलों में यही एक अर्थ इसका अभी तक उभरा है और इसलिए धर्म निरपेक्षता का जो ये दूसरा पाया है वो भी बड़ा कमजोर सिद्ध हुआ है ।*

❑ तो क्या हम ये मानें कृष्ण कुमार जी कि शुरुआती शिक्षा का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ठीकठाक नहीं बन पाया है और उसकी बुनियाद भी काफी हद तक कमजोर रही है ?

*कृष्ण कुमार : सिर्फ शुरुआती क्यों, आप माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में चले जाइये । कक्षा 12 के बच्चे को पहली बार मौका मिलता है कि वो प्रयोगशाला में दो चार प्रयोग कर सके और वो भी प्रयोग वो वाले जो प्रयोग करने के लिए दिये गये हैं । विज्ञान के बाकी जो तमाम अध्याय उसने सीखे हैं, उनको प्रयोग करके जांचने की नौबत तो कोई मानता ही नहीं कि आनी चाहिए ।और तमाम कॉलेजों में बी.एस.सी. स्तर तक भी ये नौबत नहीं आ पाती। ये सिर्फ प्राथमिक शिक्षा का मामला नहीं है । ये शिक्षा को लेकर हमारे पूरे दृष्टिकोण का मामला है।*

***अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ इतना ही है कि कल तक हम पोंगा पंथी की बात याद करते थे, आज विज्ञान की बातें याद कर लेते हैं तो जाहिर है कि ये तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी भी तरह पोंगापंथ से भिन्न नहीं है । हमारे स्कूलों में यही एक अर्थ इसका अभी तक उभरा है और इसलिए धर्म निरपेक्षता का जो ये दूसरा पाया है वो भी बड़ा कमजोर सिद्ध हुआ है ।***

❑ संवैधानिक स्तर पर शिक्षा की धर्म निरपेक्षता का जो स्वरूप और व्यावहारिक स्थिति है उस पर हमने बात की। बुनियादी शिक्षा की अवधारणा तो बड़ी जद्दोजहद और लंबे सोचविचार के बाद तैयार की गयी थी और देशज मूल्यों और सोच के प्रति भी यह बहुत संवेदनशील थी तो उसमें धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की क्या परिकल्पना थी?

*कृष्ण कुमार : ऐसा है, देखिए, गांधी जी के बुनियादी शिक्षा के दर्शन में धर्म के मामले में एक अजीब सी स्पष्टता है । आपने अगर उनके द्वारा अनुमोदित जाकिर हुसैन समिति का बनाया हुआ पाठ्यक्रम देखा हो तो आप पायेंगे कि उसमें किसी भी घंटी में किसी भी जगह नैतिक शिक्षा या धर्म की शिक्षा का कोई स्थान नहीं है और इस बात को लेकर उस दस्तावेज के प्रकाशन के बाद हिन्दुस्तानी तालीमी संघ नाम की संस्था के कुछ लोग गांधीजी के पास गये थे 1939 में और उन्होंने जाकर कहा था कि गांधीजी आप सारे जीवन धर्म की बात करते रहे हैं, आपने तो ये तक कहा है कि राजनीति भी हमको धर्मपूर्वक करनी चाहिए । आपने जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता की बात की है तो आपने शिक्षा के संदर्भ में इसकी बात क्यों नहीं की कि बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है, ये कैसे हुआ ? तो इस प्रश्न पर गांधीजी का उत्तर बड़ा सुंदर है, मैं चाहूंगा कि आप उस उत्तर को अलग से प्रकाशित करें ।*

संक्षेप में उनका उत्तर सिर्फ इतना ही है कि अगर स्कूल में धर्म और धर्मों से जुडी मोटी मोटी बातों को पढ़ा देने

की बात है तो उन्होंने कहा कि मुझे लगता है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। बल्कि ये भी संभव है कि इससे जो धार्मिक संघर्ष समाज में चल रहा है वो और बढ़ जायेगा और ये बात 1939 की है ये ध्यान रखिए । स्कूल के जीवन में नैतिकता, धर्म या सीधे सीधे नैतिक शिक्षा देकर नहीं लायी जा सकती । उन्होने कहा कि स्कूल के जीवन का जो माहौल है, नैतिक माहौल है, उसका निर्धारक तो शिक्षक ही है । उसके दैनिक जीवन में, स्कूल के दैनिक महौल में और समूचे समाज के दैनिक माहौल में जो नैतिक मूल्य झलकेंगे, बच्चे उनको ग्रहण करेंगे। अगर आप गांधीजी के इन शब्दों का अनुवाद सहज भाषा में करें तो अनुवाद यही होगा कि अगर आपको बच्चों की नैतिकता की चिंता है तो उस नैतिकता की चिंता को छोड़के बड़ों की नैतिकता की बात कीजिए । जो कुछ बड़े करेंगे, परिवार में, मौहल्ले में, समाज में, अंतत: गाहे बगाहे बच्चों के व्यवहार में वह चीज प्रवेश पायेगी। स्कूल को अलग से नैतिकता का गढ़ या गढ़ी बनाने का जो विचार है ये मैं नहीं समझता कि गांधीजी के दर्शन से किसी भी तरह मेल खाता है । स्कूल या स्कूल की एक घंटी में धर्म की शिक्षा देना या नैतिक शिक्षा देना ये तो बिल्कुल ही बुनियादी शिक्षा के दर्शन के खिलाफ है ।

डेविड ऑसबरॉ ने एक सेमिनार में छोटी सी एक बात कही थी, उसको भी यहां जोड़ लें तो हम बुनियादी शिक्षा के दर्शन को फैला पायेंगे । यद्यपि डेविड ने इसको केवल बुनियादी शिक्षा के साथ नहीं जोड़ा था बल्कि अपनी पूरी समझ के साथ जोड़ा था । लेकिन मेरी समझ में ये बात बुनियादी शिक्षा के साथ जुड़ती है । उनसे किसी ने पूछा था कि आप नैतिक शिक्षा क्यों नहीं देते । उस सेमिनार में मैं भी उपस्थित था इसलिए मुझे ये प्रसंग याद है । आप नैतिक शिक्षा की व्यवस्था क्यों नहीं करते? तो उन्होंने कहा कि नैतिक शिक्षा आप कैसे कह रहे हैं कि मैं नहीं देता ? हमारे यहां जैसे लकड़ी का काम सिखाया जाता है । अब अगर आप लकड़ी का काम किसी बच्चे को सिखाते हैं तो कुछ ही दिनों में वो यह जान लेता है कि अगर लकड़ी में कुछ ठोकना है या उसको काटना है तो अलग अलग तरह की लकड़ी के साथ अलग अलग तरह का व्यवहार करना पड़ेगा। और लकड़ी का काफी हिसाब रख के, उसकी भावनाओं का आदर करके आप उसको चीर पायेंगे, वरना वो फट जायेगी । बोले, यही हमारे पाठ्यक्रम की नैतिक शिक्षा है कि जिस चीज से आप कुछ बनाना चाहते हैं चाहे वो चीज हो या इंसान हो, उसका, उसके स्वभाव का आदर करके ही उसके साथ आप एक संबंध स्थापित कर सकते हैं। और मैं तो नहीं समझता कि इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिए हमें किसी नैतिक कहानी की, धार्मिक कहानी की जरुरत है । ये तो इन कौशलों को सीखते-सीखते अपने आप अंदर से यह अहसास जाग जाता है कि हम जिस चीज के साथ काम कर रहे हैं, जिस व्यक्ति के साथ , उसकी भावनाओं के साथ एक सामंजस्य बनाकर चलना है, उसके स्वभाव का आदर करना है वरना वो चीज टूट जायेगी। तो मुझे लगता है कि ये तो बहुत ही एक सहज रूप में पूरे बुनियादी शिक्षा के दर्शन को रेखांकित करने वाली बात है। इसलिए बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में अलग से कोई बात नहीं है तो वो बात आप समझ सकते हैं कि जब आप किसी पौधे की परवरिश करते हैं या मिट्टी से कोई चीज बनाते हैं या किसी चीज का मूल्य निर्धारण करें, तो आप समाज में जो स्थिति है मूल्यों की उसको भी समझ जाते हैं - और आप स्वयं भी, भीतर से धीरे धीरे एक मूल्य बोध को जन्म देते हैं जो उम्र बढ़ने के साथ-साथ और परिपक्व भी हो सकता है । ◆